श्री शत्रुंजय मुक्ति सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

श्री शत्रुंजय-मुक्ति
सा विद्या या विमुक्तये
सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

द्वितीय वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सम्यग्ज्ञान परिचय) अभ्यास ७

शुभाशीर्वाद

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

दिव्य कृपा

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड, सौ. भारती लोडाया

सौजन्य : श्री शत्रुंजय मुक्ति वीरेन्दु रत्नत्रयी ट्रस्ट-हुबली

स्तोत्र - अर्थ - रहस्य

२. अजित-शांति स्तव (चालु)

वेढ्ढओ (वेष्टक) छंद

आगया वरविमाण, दिव्व कणग रह तुरग पहकर सओहिं हुलिअं;
संसभमो अरण खुभिअ लुलिअ,
चलकुंडलं गयतिरीड सोहंत मउलि माला. वेढ्ढओ.........२२

रयणमाला (रत्नमाला) छंद

जंसुरसंघा, सासुरसंघा वेरविउत्ता भत्तिसुजुत्ता;
आयरभूसिअ संभमपिंडिअ, सुट्ठुसुविम्हिअ सव्वबलोधा.
उत्तम कंचण रयणपरुविअ, भासुर भूसण भासुरि अंगा;

गाय समोणय भत्तिवसागय, पंजलिपेसिअ सीस पणामा.

रयणमाला...२३

खित्तयं (क्षिप्तक) छंद

वंदिउण थोऊण तो जिणं, तिगुणमेव य पुणो पयाहिणं;
पणमिऊण य जिणं सुरासुरा, पमुइआ सभवणाईं तो गया

खित्तयं....२४

तं महामुणिं महंपि पंजलि, राग दोस भय मोह वज्जिअं;
देव दाणव नरिंद वंदिअं, संतिमुत्तमंमहातवं नमे. खित्तयं....२५

-: शब्दार्थ :-

आगया - आये हैं
वरविमाण - श्रेष्ठ विमान
दिव्व - मनोहर
कणगरह - स्वर्ण के रथ
तुरग - घोडों के
पहकर - समुह के
सएहिं - सैकडों से
हुलिअं - वेग से, शीघ्र
ससंभमो - संभ्रम से
अरण - नीचे उतरने की क्रिया
खुभिअ - क्षोभ पाने से
लुलिय - डोलते
चलकुंडल - चपल कुंडल
अंगय - बाजुबंध
तिरीड - मुगुट द्वारा
सोहतं - शोभायमान, सुंदर
मउलि - मस्तक
माला - माला
जं - जो
सुरसंघा - देवताओ का समुह
सासुरसंघा - असुरो के संघ सहित
वेरविउत्ता - बैर वृति से मुक्त
भति सुजुत्ता - भक्ति से युक्त

आयर - आदर के साथ
भूसिअ - भूषित
संभम - संभ्रम से
पिंडिय - एकत्रित हुए
सुठ्ठ - अच्छी तरह से
सुविम्हिअ - विस्मय, आश्चर्य
सव्वबलोधा - सर्व सैन्य समुह
उत्तम कंचण - उत्तम सुवर्ण
रयण - रत्न
परुविअ - बने हुए (प्ररुपित)
भासुर - प्रकाशमान, तेजस्वी
भूसण - अलंकार
भासुरिअंगा - सुशोभित अंगवाले
गाय - गात्र, शरीर
समोणय - सम्यक प्रकार से नम्र होकर
भत्तिवसागय - भक्ति से वशीभूत होकर आये हुए
पंजलि - अंजलि जोडकर
पेसिअ - किया
सीसपणामा - मस्तक से प्रणाम
वंदिउण - वंदना करके
थोउण - स्तवना करके
तं महामुणिं - उन महामुनि को

तो - उसके पश्चात
जिणं - जिन भगवान को
तिगुणमेव - तीन बार
पुणो - फिर से
पयाहिणं - प्रदक्षिणा देकर
पणमिऊण - प्रणाम करके
जिणं - श्री जिन को
सुरासुरा - सुर-असुर देवता
पमुइआ - हर्षित होकर
सभवणांइ - स्वयं के भवनों में
अहंपि - मैं भी
पंजलि - अंजलि जोडकर
राग-दोस - राग-द्वेष
भय-मोह - भय-मोह
वज्जिअं - रहित (वर्जित)
देव-दाणवनरिंद - देव,दानव और मनुष्यो के इंद्र
वंदिअं - वंदित
संति - शांतिनाथ
उत्तमंमहातवं - श्रेष्ठ, उत्तम महान तपस्वीको
नमे - नमस्कार करता हूँ

गाथार्थ :- सैकडों श्रेष्ठ विमान, सैकडों दिव्य सुवर्णमय रथ और सैकडों घोडों के समुह के साथ जो शीघ्र आये हैं तथा शीघ्रता से नीचे उतरने के कारण जिनके कान के कुंडल, बाजुबंध और मुकुट क्षोभ पाकर डोल रहे हैं तथा चंचल बने हैं तथा जो आपस की वैरवृत्ति से मुक्त तथा भक्ति से युक्त हैं, जो शिघ्रता पूर्वक इकट्ठे हुए हैं, बहुत ही आश्चर्य चकित हैं, तथा सर्व सैन्य परिवार से युक्त हैं, जिनके अंग उत्तम जाति के सुवर्ण और रत्नों से बने प्रकाशित अलंकारो द्वारा देदिप्यमान हैं, जिनके शरीर भक्तिभाव से झुके हुए हैं तथा दो हाथ अंजलि पूर्वक जोडकर मस्तक से प्रणाम कर रहे हैं, ऐसे सुर-असुरोंके संघ जो जिनेश्वर प्रभु को वंदना करके, स्तवना करके, तीन बार प्रदक्षिणा देकर फिर से प्रणाम करके अत्यंत हर्ष पूर्वक स्वयं के भवनो में वापस आते हैं । ऐसे राग, द्वेष, भय तथा मोह से रहित तथा देवेन्द्रों, दानवेन्द्रों तथा नरेंद्रो से वंदित श्रेष्ठ महान तपस्वी और महामुनि श्री शांतिनाथ भगवान को मैं भी अंजलि पूर्वक प्रणाम करता हूँ......२२-२५ ।

दीवयं (दीपक) छंद

अंबरंतर विआरणिआहिं, ललिअहंस वहुगामिणिआहिं;
पीणसोणिथण सालिणिआहिं, सकल कमलदल लोअणिआहिं. दीवयं......२६

चित्तक्खरा (चित्राक्षरा) छंद

पीणनिरंतर थणभर विणमिअ गायलआहिं;
मणिकंचण पसिढिलमेहल सोहिअ सोणितडाहिं.
वरखिंखिणि नेउर सतिलय वलय विभूसणिआहिं;
रइकर चउर मणोहर सुंदर दंसणिआहिं. चित्तक्खरा......२७

-ः शब्दार्थ ः-

अंबरंतर - आकाश मार्ग में
विआरणिआहिं - विचरने वाली
ललिअ - सुंदर
मणि कंचण - मणि सुवर्ण
पसिढिल - शिथिल (झुलती)
मेहल - मेखला से

हंसवहु - हंस की स्त्री की तरह
गामिणिआहिं - गमन करने वाली
पीण - पुष्ट
सोणि - कटि प्रदेश
थण - स्तन
सालिणिआहिं - शोभित
सकल - पूर्ण खिले हुए
कमलदल - कमल पत्र जैसी
लोअणिआहिं - लोचन वाली
पीण - पुष्ट
निरंतर - अंतर रहित
थणभर - स्तनों के भार से
विणमिअ - विशेष झुकी हुई
गायलआहिं - गात्ररुप लतावाली
सोहिअ - शोभायमान
सोणितडाहिं - कटि प्रदेश वाली
वर - श्रेष्ठ
खिंखिणि - घुंघरी
नेउर - नुपुर
सतिलय - मनोहर तिलक
वलय - कंकण से
विभूसणिआहिं - विभुषित
रइकर - प्रीति करने वाली
सुंदर - सुंदर
चउर - चतुर
मनोहर - मन हरने वाली
दंसणिआहिं - जिनका दर्शन है

गाथार्थ :- आकाश में विचरने वाली, सुंदर हंसीओ जैसी गति से चलने वाली, पुष्ट कटी भाग और स्तनो से सुशोभित, पूर्ण खिले हुए कमल के पत्र जैसे नेत्रवाली, पुष्ट और अंतर रहित स्तनो के भार से विशेष झुक गई गात्र लताओं वाली, मणि और सुवर्ण की झूलती मेखलाओं से जिनके कटि प्रदेश सुशोभित है ऐसी, उत्तम प्रकार के घुघरी वाले नुपुर, तिलक तथा कंकण से सुशोभित ऐसी, प्रीति उत्पन्न करने वाली चतुरों के मन को हरनेवाली, सुन्दर दर्शन वाली.........२६-२७ ।

श्रीगणधरवाद

आठवें गणधर श्रीअकंपितस्वामी

आधारग्रंथ - श्रीकल्पसूत्र : अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्रीगुणसागरसूरि म.सा. तथा सचित्र गणधरवाद : प.पू. अरुणविजयजी म.सा.

आर्यावर्त भारत की मिथिला नगरी बहुत वर्षो से विद्वानों की खान के रुप में प्रसिद्ध है। सैंकडो वर्षो से इस नगरी में संस्कृत के तथा न्याय दर्शन आदि शास्त्रों के धुरंधर विद्वान तैयार हुए है और आज भी अनेक पंडित इस भूमि में से तैयार होते है। ढाई हजार वर्ष पूर्व गौतम गोत्र के ब्राम्हण श्रेष्ठ देवशर्मा मिथिला में रहते थे। जयंति के साथ विवाह के बाद संसारसुख भोगते हुए उन्होंने एक तेजस्वी बालक को जन्म दिया था, उसका नाम अकंपित रखने में आया था। उत्तराषाढा नक्षत्र में जन्मे हुए इस कुमार का पूरा नाम - अकंपित देवशर्मा गौतम था। वेदाभ्यास को सहज सुलभ ऐसे ब्राह्मणकुल में अकंपित ने वेद, वेदान्त, न्याय दर्शन तथा स्व पर शास्त्रो का अभ्यास करके पांडित्य का संपादन किया, प्रखरविद्वान हुए, वाद कला में निपुण सिद्ध हुए। अनेको को अध्यापन कराने वाले अध्यापक के व्यवसाय में उनके ३०० शिष्य थे, कर्मकांडी एवं चतुर्वेदी के रुप में उनकी प्रसिद्धि थी।

किये हुए पाप की सजा अनुसार जीव नरक में जाता है और नारकी बनकर दुःखों को भोगता है वगैरह बात में उन्हें श्रद्धा नहीं थी यानि नारकी एवं नरक है या नहीं, इस बात की इस महान विद्वान के मन में शंका थी कारण यह नरकगति यहां प्रत्यक्ष नजर तो आती नहीं इसलीये शंका को स्थान था।

फिर अकंपित पंडित अपने तीन सौ विद्यार्थी शिष्यों सहित प्रभु के पास आये तब प्रभने उन्हें कहा कि, ''हे अकंपित ! **न हवै प्रेत्यनरके नारकाः सन्ति**'' इस वेद वाक्य का तू ऐसा अर्थ करता है की, कोई भी जीव मरकर परभव में नारकी होता नहीं है, कारण कि परलोक में नरक के विषय में नारकी जीव नहीं है, ऐसा सोचने से नरक के अस्तित्व के बारे में शंका तुझे हो गयी है, परंतु तू विचार कर की, **''नारके वै ऐष जायतेयः शुद्रान्नमश्राति''** इस वेद वाक्य का अर्थ क्या है ? की जो ब्राम्हण शुद्र जाति के मानव का अन्न खाता है वो नारकी होता है। ये वेदपद नरक के अस्तित्व को सूचित करते है, इसलीये तेरी शंका बराबर नहीं है, कारण की, **''न हवै प्रेत्य नरके नारका सन्ति''** इन वेदपदो का अर्थ भी यही है की परलोक में नरक तथा नारकी नहीं है, यानि की परलोक में नारकी जीव शाश्वत नहीं है, अर्थात जो उत्कृष्ट पाप करते है वो नारकी होते है, परंतु वे वहां पर शाश्वत रहते नहीं है। नरक का आयुष्य पूर्ण होने पर वहां से दूसरी गति में जाते है, परंतु नारकी जीव मरकर दूसरे ही भव में नारकी होते नहीं है, यानि नारको तुरंत बाद के परलोक मे वो नारकी होते नहीं है, पर दूसरे भव में जाते है इससे तुझे नारकी का अभाव समझना नहीं, इस तरह से वीर प्रभु के वचनो को सुनकर शंका दूर होने से अपने तीन सौ विद्यार्थी शिष्यो सहित नम्रभाव से वीर प्रभु के चरणों में झुक गये व प्रतिबोध पाये हुए वे अकंपित विद्वान ने प्रभु के पास दीक्षा लेकर प्रभु के शिष्य बनकर प्रभु के पास से त्रिपदी पाकर द्वादशांगी की रचना की।

सर्वज्ञ परमात्मा श्री महावीर प्रभु के पास अपनी शंका का समाधान कारक उत्तर प्राप्त कर वेदपदो के सच्चे अर्थ को समझे तथा तुरंत जीवन समर्पित करके जैनत्व की दीक्षा अंगीकार की। ३०० शिष्यो के साथ साधु बने। ४८ वर्ष का गृहस्थाश्रम पूर्णकर सच्चे अणगार बने, वीरप्रभु के पास से त्रिपदी पाकर द्वादशांगी की रचना कर चौदह पूर्वी बने।

चरित्र पर्याय में ३० वर्ष रहे उसमें भी नौ वर्ष छद्मस्थ अवस्था में रहकर उम्र के ५७ वे वर्ष में चार घनघाती कर्मो का क्षयकर के क्षपक श्रेणी चढकर केवलज्ञान प्राप्त किया, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी बने एवं २१ वर्ष तक केवलज्ञानी के रुप में इस पृथ्वीतल पर विचरकर अनेक भव्यात्माओं का कल्याण किया। वीर प्रभु के ग्यारह गणधरो में सबसे ज्यादा केवली पर्याय २१ वर्ष का अकंपित स्वामी का है। इतने वर्ष अन्य कोई गणधर केवली के रुप में नहीं रहे।

अपनी ७८ वर्ष की अंतिम उम्र में वे ३०० शिष्यो के साथ राजगृही पधारे एवं अंतिम एक मास के निर्जल उपवास की संलेषणापूर्वक आपश्री ने पादपोपगमन अनशन कर भगवान महावीर की उपस्थिती में संसार का अन्त कर निर्वाणपद पाया, मोक्ष सिधाये, सदा के लिये शाश्वतधाम में विराजमान हुए।

गति नामकर्म

जैन भूगोल

(लघु संग्रहणी)

आ. हरिभद्रसूरि म.

पर्वतों के शिखररुपी गिरिकूटों की गिनती हमने की । जंबूद्वीप में कहाँ कहाँ कितने गिरिकूट है यह जानकर अब हम जंबूद्वीप के भूमिकूटों का अभ्यास करेंगे ।

गिरिकूट याने पर्वतों के उपर के शिखर, भूमिकूट नामानुसार हि ये शिखर पर्वतों पर नहीं परंतु सामान्य जमीन पर ही होते है, भूमि याने जमीन और कूट याने शिखर अतः भूमिकूट याने जमीन पर के शिखर ।

चउतीसं विजएसुं उसहकूडा अट्ठ मेरु जंबुम्मि ।
अट्ठ य देवकुराए, हरिकूड हरिस्सहे सट्ठी ।।१७।।

चौतीस विजयकूटों में चौतीस ऋषभकूट, मेरु और जंबुवृक्षों पर आठ कूट है, एवं हरिकूट और हरिसहकूट ऐसे कुल साठ कूट होते है ।

३२ महाविदेह की विजय तथा भरत-ऐरावतकी एक एक ऐसे ३४ विजय में **३४** कूट है । मेरुपर्वत की तलहटी में **आठ** करिकूट है ।

जंबूवृक्ष उपर **आठ** जंबूकूट है ।

देवकुरु क्षेत्र में शाल्मलि वृक्ष उपर **आठ** शाल्मलि कूट है ।

हरिकूट और हरिस्सहकूट ये **दो** कूट विद्युत्प्रभ और माल्यवंत गजदंत के नवकूटों में आ गये है । वे पर्वतों पर होनेसे उनकी गिनती गिरिकूटों में आ गयी है । वे पर्वतों पर होनेसे उनकी गिनती गिरिकूटों में हुई है, फिर भी २५०-२५० योजन आधार के बिना (अध्दर) होने के कारण भूमिकूट में भी उनका समावेश करने में आया है ।

३४+ ८+८+८+२= ६०

यदि हरिकूट और हरिस्सहकूट की साथ में गिनती नहीं की तो ५८ भूमिकूट होते है ।

ऋषभकूट :- प्रत्येक विजयमें ६ खंड होते है । उसमें से चौथे खंडमें ऋषभकूट होते है । प्रत्येक विजय में आमने सामने दो मुख्य नदियाँ (अपने यहाँ गंगा-सिंधू) जहाँ अपने प्रपात-कुंडोमे गिरकर मोड लेती है । वहाँ उस प्रपात के बीच ऋषभकूट होते है । इस ऋषभकूट पर ऋषभ नामक अधिष्ठायक देव रहता है । चक्रवर्ती जब ६ खंड जितने के लिये निकलता है तब चौथे खंड को जितकर ऋषभकूट को अपने रथकी नोक से तीन बार स्पर्श करता है और काकीणी रत्नसे अपना नाम पूर्वदिशामें लिखता है ।

करिकूट :- यह हरिकूट हस्तिकूट और दिग्गजकूट के नामसे भी पहचाना जाता है । करि-गज-हस्ति ये सब हाथी के पर्यायवाची शब्द है । ये कूट हाथी के आकार के होने से उनके ऐसे नाम है । मेरु पर्वत के तलहटी में होने से मेरुकूट के नाम से भी विख्यात है । मेरु पर्वत की तलहटी में भद्रशाल नामक वन है । इस भद्रशाल वन के मध्य में ४ दिशा और चार विदिशाके बीच के आठ प्रदेशों में आठ हाथी के आकार के भूमिकूट है । उनके उपर देवभवन है ।

जंबूकूट :- जंबूद्वीप के अधिष्ठायक अनादत देव छोटे-बडे जंबूवृक्षों से घिरे हुए महान जंबूवृक्षपर निवास करते है । यह जंबूवृक्ष उत्तरकुरु क्षेत्र में है । इस जंबूवृक्ष के चारों ओर तीन वन है । इन तीन में से प्रथम वनमें आठ विदिशाओं में जांबूनद सुवर्णमय ऋषभकुट जैसे आठ भूमिकूट है । इन भूमिकूटों पर एक एक सिद्धायतन (शाश्वत चैत्य) है । ये सिध्दायतन एक गाऊ लंबे आधे गाऊ विस्तारवाले और एक गाऊ से कुछ कम उंचाई वाले है ।

शाल्मलिकूट :- जंबूकूट जैसेहि ये आठ कूट देवकुरु क्षेत्र में शाल्मलि वृक्ष के प्रथम वन में है । वे गरुडवेग देवके निवासस्थान है । वे रुपे के बने हुए है ।

तीर्थ

अठ्ठावन या साठ भूमिकूटों को जानने के बाद अब हम जंबूद्वीप के तीर्थोंका परिचय प्राप्त करेंगे । तीर्थ शब्द के अनेक अर्थ होते है । पूजनिक व्यक्ति, पवित्र क्षेत्र, तारक यात्राधाम, जलाशय, धार्मिक संस्था, नदियोंका संगमस्थल, चतुर्विध श्री संघ, प्रथम गणधर एवं जलाशय में उतरने का घाट ऐसे तीर्थ शब्द के अनेक अर्थ होते है । यहाँ पर अंतिम अर्थ पानी में उतरने का घाट ऐसा करने में आया है ।

ऐसे तीर्थ जंबूद्वीप में कहाँ कहाँ है एवं कितने है, उसे हम जानेंगे ।

मागह वरदाम पभास-तित्थ विजयेसु एरवयभरहे ।
चउतीसा तीहिं गुणिया, दुरुत्तरसयं तु तित्थाणं ।। १८ ।।

बत्तीस विजयों में ऐरावतक्षेत्र और भरत क्षेत्रमें मागध, वरदाम और प्रभास तीर्थ है । चौतीस को तीन से गुणाकर करने पर कुल १०२ तीर्थ होते है । भरत क्षेत्र में से लवण समुद्र में उतरना हो तो लवण समुद्र में प्रवेश के तीन स्थान है । जिनके नाम मागध, वरदाम और प्रभास है । लवण समुद्रके किनारे से १२ योजन अंदर पानी में मागध, वरदाम और प्रभास नाम के द्वीप है, जिनमें इन तीनों तीर्थों के अधिष्ठायक देवों की राजधानी है ।

चक्रवर्ती छः खंड विजित करता है, तब इन तीनों द्वीपों पर भी विजय प्राप्त करता है । प्रथम वह मागध तीर्थ के पास पडाव डालकर अठ्ठम तप की आराधना करते है । फिर चार घोडों के रथ में बैठकर पानी में जा सके वहाँ तक जाते है, फिर अपने नामवाला बाण वे मागधद्वीप पर छोडते है । बाण मागध तीर्थ के अधिपति देवसभा में जाकर पडता है । पहले तो तीर्थाधिपति कोपयमान होता है फिर चक्रवर्ती का नाम पढकर शांत हो जाता है, बाण और नजराना लेकर चक्रवर्ती के पास जाता है । हाथ जोडकर चक्रवर्ती की आज्ञा शिरोमान्य करते हुए कहता है '' मैं आपके क्षेत्र में रहनेवाला देव हूँ, आपकी आज्ञामें हूँ, आपकी आज्ञा शिरोमान्य है ।''

चक्रवर्ती अपनी आज्ञा स्थापित कर ससन्मान देव को विदाय देता है। इसी तरह अन्य दो तीर्थो में भी अपनी आज्ञा स्थापित करता है। इस तरह एक भरत, एक ऐरावत, और महाविदेह की ३२ विजय इन ३४ क्षेत्रों में प्रत्येक तीन तीर्थ ऐसे कुल ३४x३=१०२ तीर्थ जंबूद्वीप में है।

श्रेणियाँ

क्षेत्र, पर्वत, शिखर, भूमिकूट, तीर्थ आदि की जानकारी मिलाने के बाद अब श्रेणियों की जानकारी प्राप्त करना है। यहाँ पर श्रेणी याने नगरों की पंक्ति अर्थात एक ही लाइन में रहे हुए नगरों के समूह समझना है।

विज्जाहर-अभिओगिय, सेढीओ दुन्नि दुन्नि वेयड्ढे।
इय चउगुण चउतीसा, छत्तीससयं तु सेढीणं ।।१९।।

वैताढ्य पर्वत के उपर विद्याधर मनुष्यों की एवं आभियोगिक देवों की दो-दो श्रेणियाँ है। इसतरह चौतीस को चार से गुण ने पर (३४ x ४) एकसौ छैंतीस श्रेणियाँ है।

पर्वतो के परिचय अंतर्गत हम जानते है कि जंबूद्वीप में चौतीस दीर्घ वैताढ्य पर्वत है। एक भरत क्षेत्र में एक ऐरावत क्षेत्रमें और ३२ महाविदेह की ३२ विजयों में, अब इन चौतीस पर्वतोंपर विद्याधर मनुष्योंकी और आभियोगिक देवों की २-२ श्रेणियाँ है। इस तरह एक वैताढ्य पर चार श्रेणियाँ और ३४ वैताढ्यों पर १३२ श्रेणियाँ है।

विद्याधर मनुष्यों की श्रेणियाँ

हर वैताढ्य पर्वतकी रचना ऐसी है कि वैताढ्य पर्वत पर दस योजन जाने के बाद १० योजन चौडी और उत्तर-दक्षिण दिशाओं में वैताढ्य पर्वत जितनी ही लंबी दो मेखलाएँ आती है। मेखला याने सपाट प्रदेश, एक उत्तर तरफ दुसरी दक्षिण की ओर। उत्तर की ओर के मेखला पर रथनुपूर आदि ६० शहर है। दक्षिण की ओर गगनवल्लभ आदि ५० शहर है। यह भरतक्षेत्र में है।

ऐरावत क्षेत्र में उत्तर की मेखलापर ५० और दक्षिण की ओर ६० शहर है।

जब कि महाविदेह क्षेत्र में दोनो ओर ५५-५५ शहर है।

इस तरह ३४ वैताढ्य पर ६८ विद्याधर मनुष्यों की श्रेणियाँ है।

कुल नगरोंकी संख्या निम्नोक्त है -

भरत क्षेत्र - १ वैताढ्य x २ श्रेणियों के ११० नगर (५०+६०) =	११०
ऐरावत क्षेत्र - १ वैताढ्य x २ श्रेणियों के ११०नगर (६+५०) =	११०
महाविदेह क्षेत्र - ३२ वैताढ्य श्रेणियाँ ११० नगर (५५+५५)x३२ =	३५२०
कुल	३७४०

इन नगरों में सोलह विधादेवियों की सहायता से अपनी इच्छानुकूल काम करानेवाले एवं अनेक विद्याओं को धारण करनेवाले विद्याधर जाति के मनुष्य रहते है । इन नगरों के आजुबाजू अनेक छोटे गांव भी होते है ।

जंबूद्विप का मानचित्र

श्रावक - दिनकृत्य

श्रावक धन किस रीत से प्राप्त करें ?

देवाधिदेव कहते है, **''संसार छोडने जैसा है... संयम लेने जैसा है और मोक्ष प्राप्त करने जैसा है।''**

बात सच है, परंतु सब जीवों के पास संसार छोड देने का सत्व नहीं होता । साधु बनने जैसा है यह समझने के बाद भी साधु नहीं बन सकते ऐसे संसार में रहे हुए जीवों को संसार चलाने के लिये कदम कदम पर पैसों की जरुरत होती है । साधु तो गोचरी द्वारा अपना व्यवहार चलाते है । पर परमात्मा के शासन का श्रावक किसी के भी सामने हाथ पसारता नहीं है, वह तो स्वंय ही अपने आजीविका की व्यवस्था करता है ।

दुनिया में आजीविका के लिये अनेक मार्ग है । अनेक साधन है, पर इसमें श्रावक के लिये क्या योग्य है यह मार्गदर्शन कौन दे सकेगा ? श्रावक जीवन संबंधित अनेक धार्मिक ग्रंथों में मार्गदर्शन देखने को मिलता है, जिससे श्रावक पापकारी व्यवहारों से स्वयं को बचा सकता है । सर्व प्रथम तो पंद्रह कर्मादान के त्याग की बात बतायी । कर्मादान में महा आरंभ-परिग्रह के कारण ज्यादा कर्मबंध होता है । अतः पापभीरु श्रावक के लिये आचरण योग्य नहीं है । जो व्यवसाय करने से जीव अत्यंत अशुभ-हानिकारक एवं निकाचित कर्मबंध न करे ऐसा व्यवसाय श्रावक ने आजीविका के लिये करना उचित है ।

आजीविका चलाने के सात उपाय

संसार में रहे हुए गृहस्थ अपनी आजीविका विविध प्रकार के सात उपायों से चला सकते है, वे सात उपाय है -

१) **व्यापार -** घी, तेल, कपास, सूत, वस्त्र, धातु, जवाहीर आदि व्यापार के अनेक प्रकार से अपनी आजीविका चलाये ।

२) **विद्या -** विद्या याने वैद्य, ज्योतिषी, पंडित, वकालत, मंत्र,तंत्र, मुनीमगीरी आदि द्वारा आजीविका चलाये ।

३) **खेती -** जमीन पर खेती कर धान्यादि उत्पन्न कर आजीविका चलाये ।

४) **पशुपालन -** गोपलक, गडेरिया, अश्वचालक, उंटचलानेवाला आदि पशुपालन द्वारा आजीविका चलाये ।

५) **शिल्प -** चित्रकार, सुनार, छपाइ, दरजी आदि कारीगिरी काम कर आजीविका चलाये ।

६) **नोकरी -** शेठ ने बताया हुआ कार्य कर आजीविका चलाये ।

७) **भीक्षा -** मांगकर, भीक्षा लेकर उसद्वारा आजीविका चलाये ।

इन सात उपायों में व्यापार श्रेष्ठ है क्योंकि -

लक्ष्मीर्वसति वाणिज्ये, किं चिदस्तिच कर्पवै ।
अस्ति नास्तिच सेवायां, भिक्षायां न कदाचन ।।

लक्ष्मी व्यापार में ही मिलती है । थोडी थोडी खेतीवाडी से मिलती है । नोकरी करने से मिलती भी है अथवा नहीं भी मिलती, और भिक्षा से तो कभी भी लक्ष्मी का संग्रह हो नहीं सकता ।

व्यापार में सफलता प्राप्त करने के लिये सात बातें ध्यान में रखनी चाहिये । ये सात बातें नीचे बतायानुसार है -

१) **सहायकारक :-** जिसे साथ रखकर व्यापार करना है वह सहायक कैसा विश्वासु, गंभीर और अनुभवी है, इसका विचार करना चाहिये ।

२) **मुडी :-** (द्रव्य की छूट) अपने पास व्यापार में रोकने के लिये पूंजी (पैसे) का बल कितना है इसका विचार कर कदम भरना ।

३) **बळ :-** (हिंमत) व्यापार करने के लिये हिंमत अति आवश्यक है । हिंमत के बिना साहस के बिना बडा व्यापार हो नहीं सकता । अपनी जितनी हिंमत हो उस के अनुसार मर्यादा में व्यापार करना चाहिये ।

४) **भाग्योदय :-** व्यापार में पडने वाले व्यक्ति ने अपना भाग्योदय चडता है या पडता इसका भी विचार करना चाहिये ।

५) **देश :-** यह देश कौनसा है ? राजा कैसा है ? यहाँ के लोग कैसी सहायता करेंगे इस बाबत का विचार करना चाहिये ।

६) **काळ :-** किस काल में किस वस्तुकी विक्री बंध होती है, किस व्यापार से ज्यादा लाभ होता है, इसकी विचारणा करनी चाहिये ।

७) **क्षेत्र :-** इस क्षेत्र की जरुरत क्या है ? इस क्षेत्र में जरुरत की किस किस वस्तुका व्यापार करने से लाभ हो इसकी जानकारी प्राप्त कर व्यापार करना चाहिये ।

चार शुद्धियाँ

व्यापार करने में निम्नलिखित चार प्रकार की व्यवहार शुद्धि करनी चाहिये ।

१) **द्रव्य शुद्धि :-** जिस व्यापार से धर्मरक्षा होती नहीं और अपकीर्ति हो ऐसा किराणा (द्रव्य) ज्यादा लाभ होता हो तो भी पुण्यार्थी प्राणी ने लेना नहीं । पंदरह कर्मादान का संपूर्ण त्याग करना चाहिये । तैयार वस्त्र, सुत, रोकड, सोना, रुपा (चांदी) आदि का व्यापार बहुतांश निर्दोष होता है ।

२) **क्षेत्रशुद्धि :-** स्वदेश कहे जाने वाले क्षेत्र में, जहाँ के बहुत से लोग पहचान के हो, रिश्तेदार रहते हो, जहाँ के व्यापारी सत्यमार्ग के व्यवसायी हो ऐसे क्षेत्र में व्यापार करना हितावह होता है । परंतु जहाँ परराज्य का, रोगदि का उपद्रव हो ऐसे क्षेत्र में व्यापार नहीं करना । जहाँ अपना धर्म सुख से साध सके और पैदाश अच्छी हो वहाँ व्यापार करना चाहिये ।

३) **काळशुद्धि :-** काल से तीन अठ्ठाइयाँ (एक पर्वाधिराज की और दो आयंबलिकी) पर्वतिथियों में (अष्टमी, अमावस) आदि में और वर्षाकाल विरुद्ध व्यापार नहीं करना । जिस काल में, तीनों प्रकार के चातुर्मास में जिस जिस पदार्थ में बहुत जीव पडे उस पदार्थ का व्यापार न करना ।

४) **भावशुद्धि :-** व्यापार में रुकावट न आये, अपनी आबरु को नुकसान न हो इसलिये भावशुद्धि में बहुत विचार करना चाहिये । न्याय-विश्वास और वचन की दृढता रखकर, धर्म को बाध न आये इस तरह सज्जनों के साथ व्यापार करना चाहिये । क्षत्रीय, यवन, राजदरबारी, राजा आदि के साथ बहुत लाभ दिखता हो फिर भी व्यापार में लाभ दिखता नहीं । उनके साथ व्यापार करने में जोखिम होता है । अतः संभलकर काम करना पडता है ।

व्यापार में ऋण

व्यापार धंधे में पैसों का लेना-देना बहुत सोच समझकर होना चाहिये जिससे पीछे से तकलीफ ना हो। फिर भी कभी संजोग ऐसे निर्माण होते है तो अपने उपर का ऋण पहले मौके पर चुका देना चाहिये। अपने आजीविका के जितना मिला न सकता हो तो ऋणधारक ने अपना ऋण चुकाने के लिये लेनदार के यहाँ चाकर बनकर भी ऋणमोचन कर देना चाहिये। ऐसा न हुआ तो लेनदार को करज चुका न दे तो, भवांतर में उसके घर पुत्र, पुत्री, बहन, भांजी, दास, दासी, भैंसा, गधा, खच्चर, घोडा, गाय, भेंस आदिका अवतार लेकर उसका ऋण चुकाना पडता है। ऐसा जानकर कर्ज उपर रखकर जिंदगी नहीं बिताना, एवं मरना भी नहीं।

उत्तम लेनदार

लेनदार को जब खयाल आता है कि इस कर्जदार के पास देने के लिये बिलकूल द्रव्य रहा नहीं है तब उसे छोड देना चाहिये। दरिद्री को बिना वजह क्लेश अथवा पापवृद्धि के पाप में डालने से दोनों को कोई फायदा नहीं है, तब उसे छोड ही देना चाहिये। उत्तम लेनदार तो उसके पास जाकर कहता है कि, ''भाई ! जब तुझे मिले तब देना और यदि न चुका सको तो ऐसा जानना कि मैने धर्म के लिये दिया था।'' ऐसा कहकर कर्ज छोड देना चाहिये। पर बहुत समय तक ऋण संबंध नहीं रखना चाहिये। ऋणसंबंध छोड ना दे और दोनों में से एक का आयुष्य पूरा हुआ तो भवांतर में दोनों में वैरवृद्धि होगी।

व्यापार के लेनदेन में यदि अपना द्रव्य अपने हाथ न चढा, वह यदि सर्वथा आने जैसी परिस्थिति न दिखाई दे तो ऐसा ही नियम कर लेना कि मेरा यह लेना धर्मखाते है। इसलिये श्रावको ने बहुधा साधर्मिक भाईयों के साथ ही व्यापार करना चाहिये क्योंकि कदाचित उनके पास धन रह जाय तो भी वह श्रावक धर्ममार्ग में ही वापरेगा याने खुद ही वापरने जैसा होगा। अतः धर्म मार्ग में खर्चा ऐसा आशय रखकर पीछे हट जाना। कदाचित् किसी म्लेंच्छ के पास लेना रह जाय तो भी वह धर्मखाते डाल देना और अपने मृत्यु के समय वोसिरा देना चाहिये। जिससे वह पापराशि का भार उसे न लगे।

कदाचित वह लेना अपने मृत्यु के पहले वापिस आ जाय तो घरखर्च में नही वापरना अपितु संघ को सौंप देना अथवा धर्ममार्ग में वापरना।

ऋणानुबंध

भावड शेठ के यहाँ पुत्ररत्न के आगमन पूर्व ही (गर्भ में आने के साथ ही) हररोज खराब स्वप्न आने लगे। अच्छे कामो में विघ्न आने लगे। मन में भी खराब विचार आने लगे। अतः वे सोचने लगे ये बालक गर्भ में आया तभी से ऐसा दुःखदायी अनुभव होता है, उसका जन्म होगा तब तो वह कौन जाने कितने सब दुसह्य दुःखो का देनेवाला होगा। अतः जन्म के बाद अवश्य ही इसका त्याग करना योग्य होगा। ऐसा विचार कर जब उसका जन्म हुआ, तब मृत्युयोग होने से, शंका जैसा लगने पर वह नवजात बालक को लेकर शेठ स्वयं माल्हण नामक नदी के किनारे आकर सूखे पत्रों के वृक्ष तले उसे रखकर जाने लगे तब वह बालक कुछ हँसकर बोला, ''तुम्हारे पास एक लाख सौनैया मेरा लेना है, वह मुझे दे दो नहीं तो अवश्य कुछ अनर्थ होगा।'' ऐसे उसके वचन सुनकर

शेठ उसे वापीस ले आये उसका जन्मोत्सव, छठ्ठो का जागरण, नामस्थापना आदि का महोत्सव कर एक लाख सोनैये पूरे कर दिये, लेना पूरा होते हि वह चलता बना । उसके बाद दुसरा पुत्र भी ऐसाही पैदा हुआ और वह भी तीन लाख का अपना लेना लेकर चलता बना ।

उसके बाद शुभ शकुन से सूचित तीसरा पुत्र गर्भ में आया तब यह तो जरुर भाग्यशाली बनेगा ऐसा शेठने जाना । फिर भी दो पुत्रों के अनुभव से डरे हुए शेठ तीसरे पुत्र का भी त्याग करने उद्यत हुआ तब वह पुत्र बोला, ''उन्नीस लाख सोनैया तुम्हारा मेरे पर कर्ज है वह चुकाने के लिये तुम्हारे घर मैं अवतरित हुआ हुं, वह देने के सिवाय मैं जानेवाला नहीं हूं।''

बालक के ऐसे वचन सुनकर सेठ ने विचार किया कि ''उसकी जितनी आमदनी होगी वह सब धर्ममार्ग में खर्च करना।'' ऐसी धारण कर अपने घर लाकर बडा किया और वह जावडशा के नाम से प्रसिद्ध होकर बहुत भाग्यशाली बना । जावडशा ने वि.स. १०८ में श्री शत्रुंजय तीर्थ का बडा उद्धार किया ।

अतः अपने घर में भी एक दूजे के ऋण चुकाने ही एकत्रित होते है, ऐसा जानकर जिसका जैसा ऋण हो वैसा चुकाकर ज्यादा ऋण न रखकर शांतिमय जीवन व्यतीत करना लाभदायक है ।

कर्म - विज्ञान

(आधार ग्रंथ - कर्म - विपाक (प्रथम कर्मग्रंथ) - आ. देवेन्द्रसूरि म.)

नाम - कर्म (चालू)

इअ सत्तट्ठी बंधोदए य, न य सम्म-मीसया बंधे ।
बंधुदए सत्ताए, वीस - दु वीसट्ठ - वण्ण सयं ।।३२।।

गाथार्थ - इस प्रकार नाम कर्म की सडसठ प्रकृतियाँ बंध और उदय में होती हैं । मोहनीय कर्म की दो प्रकृतियाँ, सम्यकत्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय बंध मे नहीं होती है । बंध उदय और सत्ता में क्रमशः एक सौ बीस एक सो बावीस और एक सौ अट्ठावन प्रकृतियाँ होती हैं ।। ३२ ।।

नाम कर्म की उपर बताई गई सडसठ प्रकृतियाँ बंध उदय और उदिरणा में होती हैं ।

सम्यकत्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय ये दो प्रकृतियों का बंध कभी नहीं होता, कारण कि जीव दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियों में से बाँधता तो मिथ्यात्व मोहनीय कर्म ही है, परंतु जीवात्मा को जब उपशम सम्यकत्व की उपलब्धि होती है तब मिथ्यात्व मोहनीय के पुद्‌गल तीन भागों में विभक्त हो जाते हैं । शुद्ध, अर्ध शुद्ध और अशुद्ध, इन तीन पुंजों को क्रमशः सम्यक्त्व मोहनीय मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय कहा जाता है । इस कारण से मोहनीय की कुल २८ प्रकृति में से, बंध अवस्था में २६ प्रकृतियाँ ही होती हैं, इससे मोहनीय की २६, नाम कर्म की ६७ तथा दूसरे छः कर्म की २७ (२६+६७+२७=१२०) इस तरह ८ कर्म की कुल १२० प्रकृतियाँ बंध होती हैं ।

मोहनीय की २८, नामकर्म की ६७ शेष ६ कर्म की २७ ऐसे कुल (२८+६७+२७=१२२) आठ कर्म की १२२ प्रकृति उदय और उदिरणा में होती है ।

मोहनीय की २८, नामकर्म की १०३, शेष ६ कर्म की २७ ऐसे आठ कर्म की (२८+१०३+२७=१५८) कुल १५८ प्रकृति सत्ता में होती है ।

पिंड प्रकृति के ६५ उत्तर भेदों के नाम और व्याख्यायें

गतिनाम कर्म

निरय-तिरि-नर-सुर-गइ इग-बिअ-तिअ-चउ-पणिंदि-जाईओ ।
ओराल-विउव्वा- ऽऽहारग-तेअ कम्मण पण-सरीरा ।।३३।।

गाथार्थ - गति नाम कर्म के चार भेद इस प्रकार जानने चाहिये - नरक गति तिर्यंच गति, मनुष्य गति, देव गति । जाति नाम कर्म पाँच प्रकार का होता है - एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति । शरीर नाम कर्म के पाँच प्रकार होते हैं - औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस और कार्मण शरीर ।

''गमनम् = गतिः ''

जगत मे द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव के संजोगो से गुंथी हुई कुदरत अनेक प्रकार की होती है, परंतु आत्मा को

कोई भी कर्म भोराने के लिये किसी एक कुदरती घटना का आश्रय लेना पडता है । इस कुदरती घटना को गति कहते है, एक, एक गति में ले जाने वाला एक निश्चित कर्म होता है । उस कर्म से उसी गति में जाते है ।

गति चार है, इससे उसमें ले जाने वाले कर्म भी चार हैं ।

१. नरकगति नामकर्म - नरक गति में ले जाने वाला कर्म वह - नरकगति कर्म ।

२. तिर्यंच गति नामकर्म - तिर्यंच गति में ले जाने वाला कर्म वह - तिर्यंच गति नाम कर्म ।

३. मनुष्यगति नामकर्म - मनुष्यगति में ले जाने वाला कर्म वह - मनुष्य गति नाम कर्म ।

४. देवगति नामकर्म - देव गति में ले जाने वाला कर्म वह - देव गति नाम कर्म ।

गति पाने के बावजूद किस गति में कौन से स्थान में, कैसे शरीरादि में उत्पन्न होना यह बाजी भी अपने हाथ में नहीं है, वो भी कर्म सत्ता ही निश्चित करती है । गति के किस भेद में उत्पन्न होना यह निश्चित करने वाला कर्म है, जाति नाम कर्म । जाति नाम कर्म के पाँच कर्म हैं ।

जाति नाम कर्म (जा.ना. कर्म)

एकेन्द्रिय जा.ना. कर्म	द्विन्द्रिय जा.ना. कर्म	तीन्द्रिय जा.ना. कर्म	चतुरिन्द्रिय जा.ना. कर्म	पंचेन्द्रिय जा.ना. कर्म

१) एकेन्द्रिय जाति प्रदान करने वाले कर्म को एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म कहतेहैं । जिस कर्म के कारण 'यह भी एकेन्द्रिय है वह भी एकेन्द्रिय है', इस प्रकार परस्पर तुल्य व्यवहार जगत में दृष्टिगत होता है, उसे एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म कहते हैं । सर्व जीवों की अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवों में ज्ञान का सबसेकम भाग खुला होता है । एकेन्द्रिय जीवों मे एक मात्र स्पर्शनेन्द्रिय होती है । एकेन्द्रिय जीवों के पाँच भेद हैं १) पृथ्विकाय २) अपकाय ३) तेउकाय ४) वायुकाय ५) वनस्पतिकाय ।

२) द्वीन्द्रिय जाति प्रदानकरने वाले कर्म को द्वीन्द्रिय जाति नाम कर्म कहते है, जिस कर्म के कारण द्वीन्द्रिय जीवों में ''यह भी द्वीन्द्रिय है, वह भी द्वीन्द्रिय है । '' इस प्रकार का परस्पर तुल्य व्यवहार होता है उसे द्वीन्द्रिय जाति नाम कर्म कहते हैं । इनमें स्पर्शनेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय रुप दो इन्द्रिया होती हैं ।

३) त्रीन्द्रिय जाति प्रदान करने वाले कर्म को त्रीन्द्रियजाति नाम कर्म कहते हैं । जिस कर्म के कारण 'यह भी त्रीन्द्रिय है वह भी त्रीन्द्रिय है।'' इस प्रकार का परस्पर समान व्यवहार होता है, उसे त्रीन्द्रिय जाति नाम कर्म कहते हैं । इनमें स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, और घ्राणेन्द्रिय रुप तीन इन्द्रियां होती है ।

४) चतुरिन्द्रिय जाति प्रदानकरने वाले कर्म को चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्म कहते हैं । जिस कर्म के कारण चतुरिन्द्रिय जीवों में ''यह चतुरिन्द्रिय है, वह भी चतुरिन्द्रिय है।'' इस प्रकार का परस्पर तुल्य व्यवहार होता है, उसे चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्म कहते हैं । इनमें उपरोक्त तीन इन्द्रियों के अतिरिक्त चक्षुरिन्द्रिय अधिक होती है ।

५) पंचेन्द्रिय जाति प्रदान करने वाले कर्म को पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म कहते है । जिस कर्म के कारण पंचेन्द्रिय जीवों में यह भी पंचेन्द्रय है, वह भी पंचेन्द्रिय है इस प्रकार का समान कथन होता है, उसे पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म कहते हैं, पंचेन्द्रिय प्राणीयों में सबसे अधिक ज्ञान होता है । पंचेन्द्रिय प्राणी में श्रोतेन्द्रिय सहित पाँच इन्द्रियाँ

होती है।

जाति नाम कर्म किसी भी जीव को इन्द्रिय प्रदान नहीं करता। जाति नाम कर्म का अर्थ समूह वर्ग से है, न कि इन्द्रियाँ प्रदान करने वाले कर्म से। सभी जीवों को मिलने वाली द्रव्येन्द्रियाँ तो शरीर नाम कर्म, अंगोपांग नामकर्म इन्द्रिय पर्याप्ति नाम कर्म की सहायता से होती हैं। भावेन्द्रिय आत्मा का गुण होने से ज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय (मतिज्ञान) के क्षयोपशम से होता है।

शरीर नाम कर्म

''शीर्यते तच्छरीरम् '' प्रतिक्षण पुद्‌गल के उपचय और अपचय से बढता-घटता है वह शरीर।

शरीर नाम कर्म के पाँच प्रकार हैं।

शरीर नाम कर्म

औदारिक शरीर नामकर्म	वैक्रियशरीर नामकर्म	आहारक शरीर नामकर्म	तैजस शरीर नामकर्म	कार्मणशरीर नामकर्म

१) औदारिक शरीर नाम कर्म :- रक्त, अस्थि, मांस आदि सप्त धातूओ से बने शरीर को औदारिक शरीर कहते है। इस शरीर की अवगाहना अन्य शरीरों से बडी होती हैं। अन्य वर्गणाओं की अपेक्षा इसकी वर्गणाएं स्थूल हैं। तीर्थंकर-गणधर यही शरीर धारण करते हैं। मोक्ष रुपी संपत्ति का दान -प्रदान करने में जो शरीर उदार होता है, वह औदारिक शरीर कहलाता हैं। औदारिक शरीर बनाने के लिये चाहिये वह औदारिक वर्गणा प्रदान करने वाला कर्म औदारिक शरीर नाम कर्म। मनुष्य और तिर्यंच प्राणीयों का औदारिक शरीर होता है।

२) वैक्रिय शरीर नाम कर्म :- छोटा,बडा, भारी हलका, दृश्य,अदृश्य, एक, अनेक आदि विविध क्रियाएँ करने में समर्थ शरीर को वैक्रिय शरीर कहते हैं। ऐसा वैक्रिय शरीर बनाने के लिये चाहिये वो वैक्रिय वर्गणा प्रदान करने वाला कर्म वैक्रिय शरीर नाम कर्म। वैक्रिय शरीर देव, नारकी को नियमतः होता है। उसी प्रकार लब्धिवंत मानवी तथा तिर्यंच और वायुकाय भी इस शरीर का निर्माण कर सकते हैं।

३) आहारक शरीर नामकर्म - तीर्थंकर परमात्मा के दर्शन करने के लिये, आगम सूत्र के अर्थ बोध के लिये अथवा अपने संशय दूर करने के लिये चौदह पूर्वधर बंद मुठ्ठी वाले एक हाथ प्रमाण वाले स्फटिक की भांति पारदर्शी जिस शरीर का निर्माण करते हैं, उसे आहारक शरीर कहते हैं। यह शरीर किसी को दिखता है, किसी को नहीं दिखता है। आहारक शरीर बनाने के लिये चाहिये वो आहारक वर्गणा प्रदान करने वाला कर्म आहारक शरीर नाम कर्म कहलाता है। यह शरीर केवल आहारक लब्धि सम्पन्न साधु ही बना सकते हैं।

४) तेजस शरीर नामकर्म - तेज के पुद्‌गलों से बना तेजस शरीर है। तेजस शरीर आंखो से देख नहीं सकते। अपने द्वारा ग्रहण किये हुए आहार को पचाने का काम तेजस शरीर करता है। इस शरीर के द्वारा ही लब्धिवंत तेजस लेश्या छोड सकते हैं।

तेजस शरीर बनाने के लिये चाहिये वह तेजस वर्गणा प्रदान करनेवाला कर्म वह तेजस शरीर नामकर्म।

५) कार्मण शरीर नाम कर्म - आठ कर्म पुद्‌गलों के शरीर को कार्मण शरीर कहते हैं। कार्मण शरीर भी देख नहीं सकतें, अदृश्य है, परंतु उसके परिणाम हम हर क्षण अनुभव करते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव कर्म पुद्‌गल ग्रहण करके रुपीपने में परिणमन करते हैं वह कार्मण शरीर नाम कर्म।

अंगोपांग - नाम कर्म

बाहुरु-पिट्ठी-सिर-उर उयरंग, उवंग अंगुली-पमुहा।
सेसा अगोवंगा पढम तणुतिगस्सुवंगाणि ।।३४ ।।

गाथार्थ : दो भुजा, दो जंघा, पीठ, मस्तक, हृदय और उदर ये आठ अंग होते हैं। अंगुली आदि उपांग कहलाते हैं। शेष (रेखा आदि) अंगोपांग कहलाते हैं। प्रथम तीन शरीरों में ही अंग, उपांग एवं अंगोपांग होते हैं।।३४।।

अंग - शरीर के मुख्य अवयवों को अंग कहते हैं। अंग आठ हैं -

१) (१-२) दो भुजाएँ, (३-४) दोनों जंघा-पाँव, (५) पीठ (६) मस्तक (७) छाती-हृदय (८) उदर - पेट

२) उपांग - अंग के भेदों, उप-अवयवों को उपांग कहते हैं। जैसे हाथ अंग तो उसके अवयव रुप उँगलियाँ उपांग हैं। पाँव अंग है तो उसमें घुटना उॅंगलियाँ आदि उपांग है। पीठ रुप अंग के अवयव रुप मणका इत्यादि उपांग हैं। मस्तक अंग है और उसके अवयव रुप आँख कान, नाक आदि उपांग। छाती-हृदय अंग है उसके अवयव रुप स्तन आदि उपांग हैं। उदर (पेट) अंग है, उसके अवयव रुप नाभि आदि उपांग है।

३) अंगोपांग - उपांग के भेदों /अवयवों को अंगोपांग कहते है, जैसे - अंगूठा, अंगुलियाँ रुप उपांग में स्थित नाखून, रेखाएँ आदि, आँख रुप उपांग में स्थित कीकी, भौहें आदि अंगोपांग हैं।

अंग उपांग और अंगोपांग प्रथम तीन औदारिक, वैक्रिय और आहारक इन तीन शरीर में ही पाये जाते हैं। तेजस -कार्मण शरीर को अंगोपांग नहीं होते कारण कि उनका कोई आकार नहीं होता।

इन अंगोपांग को प्रदान करने वाला कर्म अंगोपांग नाम कर्म कहते हैं।

१) जिस कर्म के उदय से औदारिक शरीर रुप परिणाम पाये पुद्‌गलों मेंसे औदारिक शरीर योग्य अंग, उपांग और अंगोपांग के स्पष्ट विभाग रुप परिणाम होता है, वह औदारिक अंगोपांग नामकर्म हैं।

२) जिस कर्म के उदय से वैक्रिय शरीर रुप परिणाम पाये पुद्‌गलों में से वैक्रिय शरीर योग्य अंग, उपांग और अंगोपांग के स्पष्ट विभाग रुप परिणाम होता है वह वैक्रिय अंगोपांग नाम कर्म है।

३) जिस कर्म के उदय से आहारक शरीर रुप परिणाम पाये पुद्‌गलों में से आहारक शरीर योग्य अंग, उपांग और अंगोपांग के स्पष्ट विभाग रुप परिणाम होता है वह आहारक अंगोपांग नामकर्म है।

बंधन नामकर्म

उरल ऽऽ इ पुग्गलाणं निबद्ध - बज्झंतयाण संबंध।
जं कुणाइ जउ-समं तं बंधण मुरला ऽऽइ तणुनामा ।।३५।।

गाथार्थ - पूर्व मे बधे हुए और नये बंध रहे औदारिक आदि वर्गणा के पुद्‌गलों में परस्पर लाख के समान संयोग / संबंध स्थापित करने वाले कर्म को औदारिक आदि बंधन नाम कर्म कहते हैं।

बंधन नाम कर्म पाँच प्रकार का हैं -

१) औदारिक बंधन नाम कर्म २) वैक्रिय बंधन नाम कर्म ३) आहारक बंधन नाम कर्म ४) तेजस बंधन नाम कर्म ५) कार्मण बंधन नाम कर्म

संघातन नाम कर्म

जं संघायइ उरला - ऽऽइ - पुग्गले तिणगणं व दंताली ।।
तं संघायं बंधणमिव तणु नामेण पंच विहं ।।३६।।

गाथार्थ : जिस प्रकार दंताली बिखरे हुए घास (तृण) को एकत्र करती है, उसी प्रकार औदारिक पुद्‌गलों को एकत्र करके प्रदान करनेवाला संघातन नाम कर्म है । इसके भी बंधन नाम कर्म की भांति औदारिक ादि के नाम से पाँच प्रकार होते हैं ।।३६।।

विविध भवो में, विविध समय पर जरुरी ऐसे शरीर रचना में अनुकुल पुद्‌गलों के जत्थे का संग्रह करके प्रदान करने वाला कर्म वह संघातन नाम कर्म है । यह पाँच शरीर अनुसार पाँच प्रकार से हैं -

१) औदारिक संघातन नाम कर्म २) वैक्रिय संघातन नाम कर्म ३) आहारक संघातन नाम कर्म ४) तेजस संघातन नाम कर्म ५) कार्मण संघातन नाम कर्म

पंद्रह प्रकार के बंधननामकर्म

ओराल-विउव्वा-हारयाण, सग-ते अ कम्मजुत्ताणं ।।
नव बंधणाणि इयरदु-सहियाणं तिन्नि तेसिं च ।।३७।।

गाथार्थ :- स्वयं के साथ, तेजस बंधन नामकर्म और कार्मण बंधन नाम कर्म के साथ औदारिक, वैक्रिय और आहारक बंधन नाम कर्म का योग होने पर कुल नौ प्रकार के बंधन नाम कर्म होते है । उन्हीं औदारिक आदि तीन बंधनो को तेजस एवं कार्मण के साथ जोडने से अन्य तीन बंधन नाम कर्म होते है तथा तेजस एवं कार्मण के भी तीन भेद मिलाने से कुल पंद्रह बंधन नाम कर्म होते है ।।३७।।

कुल बंधन के १५ भेद हैं उन्हें जानने समझने का प्रयत्न करेंगे ।

१) औदारिक - वैक्रिय - आहारक के स्वयं स्वयं के साथ तथा तेजस - कार्मण के स्वयं के साथ ९ बंधन होते हैं -

१) औदारिक-औदारिक बंधन २) औदारिक तेजस बंधन ३) औदारिक कार्मण बंधन ४) वैक्रिय-वैक्रिय बंधन ५) वैक्रिय तेजस बंधन ६) वैक्रिय कार्मण बंधन ७) आहारक - आहारक बंधन ८) आहारक तेजस बंधन ९) आहारक कार्मण बंधन ।

२) तीन शरीर के तेजस-कार्मण के साथ संयुक्त बंधन तीन होते है - १०) औदारिक-तेजस-कार्मण बंधन ११) वैक्रिय-तेजस-कार्मण बंधन १२) आहारक तेजस - कार्मण बंधन ।

३) तेजस कार्मण के परस्पर बंधन तीन होते हैं - १३) तेजस-तेजस बंधन १४) तेजस-कार्मण बंधन १५) कार्मण-कार्मण बंधन इस तरह कुल (९+३+३=१५) पंद्रह बंधन होते हैं ।

विरति वाटिका

कर्मादान

संसार है वहां संसार का सुख से निर्वाह हो इसके लिये आजीविका आवश्यक है, कारण की प्रभु का श्रावक कहीं पर भी हाथ पसारता नहीं है। श्रावक को सामन्यतः आरंभ यानि जिसमें जीवो का उपघात हो ऐसे मार्ग से सम्पति कमाने की नहीं है, फिर भी आरंभ के बिना सुख से निर्वाह न होता हो तो अल्प आरंभ से काम चलाये, कर्म की बलिहारी से शायद अल्प आरंभ से भी काम न चलता हो तो ही इन कर्मादानो वाला उद्यम करे।

वास्तव में श्रावक कर्मादान का त्यागी ही होता है, कारण कि कर्मादान से कर्मो का बहुत ही बडा जत्था आत्मा में प्रवेश करता है, कर्मादान से बहुत सारे जीवो के घात का निमित्त बनते है।

कर्मादान का सम्पूर्ण त्याग यदि संभव नहीं होता है तो इसकी मर्याद निश्चित जरुर करना। अनिच्छा से करने पडते कर्मादान का आगार रख अन्य सारे ही कर्मादानो का त्याग कर देना जरुरी है। इस कर्मादान का भी समय आने पर त्यागकर जीवन को निर्मल बनाने सावधान रहने का है।

कर्मादान भोगोपभोग नहीं है, परंतु इस उद्योग द्वारा प्राप्त करने में आता धन वो भोगोपभोग का कारण है, कारण में कार्य का उपचार करने कर्मादान को भोगोपभोग मानने में आया है।

भवोभव में, अनार्य देश में, पैसा कमाने की लालच से इन जीव ने अनेक बार कर्मादान में उद्यम किया है, इससे चार गतिमय संसार में अनेक बार इस जीव ने परिभ्रमण किया है, फिर भी इसका अंत आया नहीं है, अब यदि इस दुःखमय संसार में से बाहर निकलना हो तो हमें समझकर सावध और इसमें भी सविशेष कर्म के कारणभूत कर्मादान का अवश्य त्याग करने के भाव रखना चाहिये।

इस विशेष पापकर्म के बंधरुप कर्मादान को समझकर इसमें से बाहर निकलने प्रथम हम कर्मादान को उसके अतिचारो को, उसके सेवन से अपने जीवन में लगते दोषों को जानने का बेहतर प्रयत्न करते हैं।

१) ईंगाल कर्म : रंग करने वाले रंगरेज लोग जो भट्टी करते है वो रांगण, लकडे जलाकर कोयले बनाने वाला लिहाला, सुनार का धंधा, कांसे का धंधा, पैरो में पहने जाने वाली बिछुडी, अंगूठिया, कडे आदि बनानेवाला ढंढारा, दालिये, मुरमुरे, धानी बनानेवाला भाडभूंजा, ईंट बनाने वाला ईंटवाह, घडे, मिट्टी के बर्तन आदि बनाकर निभाड में पकानेवाला कुंभार, वो निमाह तांबा, पीतल आदि धातु को तपानेवाले वगैरह तथा इसी तरह के लुहार कर्म, चूडी बनानेवाले, कलई करनेवाले, हलवाई, धोबी, भट्टी लगाने वाले आदि जितने अग्नि के द्वारा व्यापार होते है वो सारे ईंगाल कर्म जानना, इसमें बहुत दोष है, क्योंकि अग्नि है वो सारे शस्त्रो में मुख्य शस्त्र है, दसो दिशाओ में छः काय जीवो को मारती है।

२) वनकर्म : कण यानि धान्य, कपासिये तथा बगीचे के फूल, पत्ते इन वस्तुओं का विक्रय किया हो, धान्य को पीसना, भरडना, खांडना, कपासिये निकलाने का कारखाना डाला हो, बडे बांस, लकडे को कटाया हो, फाडकर दो टुकडे तथा पाटिये कराये हो वो सब वनकर्म जानना तथा हरी वनस्पति, हरे बीज आदि का

व्यापार आजीविका के निमित्त से करना, किसान को पहले पैसे देकर फिर धान्य उगे तब ज्यादा लेना वो भी वनकर्म में ही गिना जाता है । इसमें वनस्पति के जीव तथा उनपर आश्रित त्रस जीवो की अवश्य विराधना होती है इसलीये यह कर्म अनाचरणीय है ।

३) साडी कर्म यानि शकटकर्म : बडी गाडी, वहेल यानि रथ के पहिये बडी नाव की जाति उसी तरह उनके अंग यानि गाडी की धुरी, पहिये वगैरह ये सब नये बनाकर उसका विक्रय करना ये भी महाहिंसा का कारण होने से अनाचरणीय है ।

४) भाटक यानि भाडा कर्म : भारवाहक बैल का भाडा, वहित्रां यानि भार उठाने का कर्म, ऊंट का भाडा, बैल, गधे, खच्चर का भाडा तथा गाडी का भाडा लिया हो तथा घर, दुकान, वखार (लकडे की टाल) आदि भाडे पर देना एवं सार्थवाह का व्यापार, हुंडा भाडे का व्यापार जिसमें कोई अपनी चीज दूसरो को भाडे पर देना उसमे बैल, घोडे वगैरह जीवो को ताडन करना पडे तथा गाडी आदि को मार्ग में चलाने से त्रस आदि जीवो की हिंसा अवश्य होती है, इसलीये यह कर्म भी वर्जनीय है ।

५) फोटिककर्म : अपनी आजीविका चलाने के लिये फोड करना यानि पृथ्वी को खोदना जैसे कि हीरे, रतन की खान खुदवाना, पत्थर एवं मिट्टी की खदान खुदवाना व मुरड यानि खोदते-खोदते मिट्टी निकलने के बाद कच्चे छोटे पत्थर निकले वो मुरड, करसण यानि खेती करना, कुँए खुदवाना, तलाब खुदवाना, नीक (नहर) खोदना, हल चलाना, छिद्र करवाना, सुरंग बनवाना, तहखाने बनवाना इत्यादि सारे फोडने के कर्म में त्रसकाय जीवो की हिंसा होती है, बहुत से जीवो का घात होता है, इसलीये ये पांचो कुकर्म महाहिंसामय होने से त्याज्य है ।

अब पांच कुवाणिज्य कहते है :-

१) दंत वाणिज्य : आगर (घर) में जाकर हाथी के दांत, गाय के पूंछ के चँवर, मृग की नाभि की कस्तुरी, उल्लू के नख, पंखीयो के रोम तथा चर्म, बाघ का चमडा, हरिण आदि जानवरो का चमडा, हरिण, सांभर व गैंडे आदि के सींग, बाघ की मूंछो के बाल, कचकडा, रेशम के कीडो का रेशम, ऊन आदि यह माल लेने जब आगर में जाय तब भील वगैरह क्षुद्र लोग तुरंत गेंडा, मृग, हाथी आदि जीवो की हिंसा करने की प्रवृति कर महा अनर्थ कर डाले एवं अपना जीव भी मलीन हो जाय, लोभ के कारण शायद उन लोगो से ऐसा कहना पडे की हमारे लिये अच्छे बडे दांत लेकर आओगे तो ज्यादा धन पाओगे, इत्यादि कहना पडे इसलीये ऐसी चीजे आगर पर जाकर लेना, यह कर्मादान है, त्याज्य है ।

२) लाख वाणिज्य : लाख, गली, मणशील, धाउडी, महुडा, कपिला तूरी, साजीखार, साकरोड, टंकण, खार आदि को लेना, साबुन, भांग, कंद आदि को लेना यानि इनका व्यापार करना वो भी महाहिंसाकारी अनर्थ का मूल है, इसलीये उसे कुवाणिज्य कहते है ।

३) रस वाणिज्य : रस का व्यापार यंहा रस वो मांसरस तथा मध और मधांग यानि मदिरा के अंग तथा मधु ते मध (शहद) और मक्खन ये चार तो महाविगई है ये भयंकर पाप के कारण है तथा वेशण ये तेल, दूध, दही, घृत, गुड व शक्कर आदि रसवाली जो नरम चीजे है, उनका व्यापार, विक्रय करना वो भी त्याज्य है । चिकने रस वाली वस्तुओ के जहां बर्तन खुले रह जाय वहां भी छोटे बडे जीव आकर पडते है ये कुवाणिज्य है बहुत हिंसामय है ।

४) विष वाणिज्य : विष का व्यापार करना, विष जैसे सोमल वच्छनाग, अफीम, आदि हल वो जमीन जोतने का हल, मूसल, ऊखल, कोश, कुल्हाडी वगैरह जानना आदि तथा नाल, गोले आदि एवं विषैली वस्तु को बेचा, बिकवाया हो, खुद बेचे, दूसरो की बिकवा दे वो सारे व्यापार को विष कुवाणिज्य कहते है ।

५) केश वाणिज्य : द्विपद यानि दास, दासी, गुलाम आदि को आजीविका के लिये उद्देश्य से खरीद कर परदेश में जाकर बेचे और चुतष्पद जैसे गाय, भैंस, घोडा, हाथी, बैल, बकरी, भैंसा, वैसे ही पंखी आदि का विक्रय किया हो ये पांच कुवाणिज्य कहे है ।

अब पांच सामान्य कर्म कहते है :

१) यंत्रपीलन कर्म : अरहट्ट यानि पानी खीचने की चरखी, पावट्ट, कोल्हु यानि ऊस का रस निकालने का यंत्र, लोढणी (रुई में से कपासिया निकलाने का यंत्र), चरखा, ऊखल, खांडने (कूटने) की मूसल, आटा पीसने की चक्की, तिल, सरसो, अरंडी आदि में से तेल निकालने की घाणी, इस प्रकार से जिसमें पीलनकर्म होते है ऐसे यंत्रो को बनाया, बनवाया हो, चलाये हो, नये करके बेचे हो, वो सारे यंत्रपीलन कर्म जानना ।

२) निर्ल्लांछन कर्म : द्विपद जैसे बालक के कान,नाक,छेदना पुरुष को नपुंसक करना एवं चतुष्पद जैसे बैल, ऊंट, घोडा आदि जीवो पर काट करके निशानी लगाना, लगवाना, चटके देकर त्रिशुल निकालना, पाछणा यानि शरीर के बाल उतारना कान, कंबल यानि गले के नीचे जो गाय वगैरह का झूलता चर्म रहता है वो तथा मुष्क यानि अंड इन सब का छेदन करना एवं पृष्ठिगालन यानि शरीर के पीछे के भाग पर चार भार डाल-डाल कर निशानी डालना, नासावेधादिक यानि नासिका को वेधना आदिइस तरह से शरीर को हानि पहुंचाकर भयंकर वेदना पहुँचाये, स्पर्धाओ में दौडादौडी कराये, निर्दयपने से उन पर खूब शस्त्र चलाये, इत्यादि निर्दयपने के कर्म स्वयं ने किये हो, दूसरे के हाथ से कराये हो वो सब निर्ल्लांछन कर्म जानना ।

३) दावाग्निदापन कर्म : इस जंगल को वन को अग्नि से जलाकर साफ करेंगे तो भी खड यानि घास ये अनाज आदि की बहुत निष्पति होगी ऐसा विचार कर खुद वंहा जलाये या दूसरो के पास से जलवाये ।

४) शोषणकर्म : सरोवर का जल सोख लिया हो तथा उखर क्षेत्र या घास वाले भूभाग में हल चलवाया हो, पानी के क्यारे गला दे (नष्ट कर दे) अपने क्षेत्र में पानी लाने के लिये नजदीक के नहर-तलाब को फोडा हो ये सारे शोषण कर्म कहलाते है ।

५) असतीपोषणकर्म : मनोरंजन की खातिर श्वान, बिल्ले, मैना, मुर्गे, नपुंसक आदि को पाले तथा खराब आचरण वाले ऐसे दास, दासी आदि का पालन पोषण करना वो सब असती पोषण कर्म जानना ।

ये कहे है कर्मादान, इससे भी अन्य जिसमें बहुत पाप हो ऐसे व्यापार, व्यवसाय किये हो जैसे कि मच्छीमार, कसाई, वाघरी (अनुचित कार्य करने वाले) चमार, आदि बहु आरंभी जीवो के साथ व्यापार करना, उन्हें खर्च हेतु अच्छा द्रव्य (धन) वगैरह देना वो सब भी असतीपोषण कर्म है । इस प्रकार के भयंकर कर्मबंध के कारण है ऐसे जो गुप्तपालन आदि पन्द्रह कर्मादान इसमें स्थूल यानि बडे कर्म न करना ऐसा नियम किया है, एवं सूक्ष्म से जयणा रखी है । ये पन्द्रह अतिचार श्रावक को जानना पर आचरण में नहीं लाना । इन पन्द्रह अतिचारो में से जो कुछ भी सूक्ष्म बादर, पाप या दोष लगे हो उनका मिच्छामि दुक्कडं लेना ।

पन्द्रह कर्मादान संबंधी नियम :

१) मैं भट्ठी में लोहे, तांबा, पीतल, वगैरह धातुओ का धंधा नहीं करुंगा।
२) मैं कोयले बनाने तथा ईंट, कवेलु पकाने का धंधा नहीं करुंगा।
३) मैं जगंल काटने तथा लकडे लेने, बेचने का धंधा नहीं करुंगा।
४) मैं अनाज पीसने, कूटने का धंधा नहीं करुंगा।
५) मैं दालमिल, राइसमिल वगैरह फेक्ट्रीयां चलाऊंगा नहीं।
६) मैं वाहन बनाने की और उसके स्पेयर पार्टस बनाने की फेक्ट्री डालुंगा नहीं।
७) मैं पेट्रोल, डीजल से चलते कोई भी वाहन को बेचने का धंधा नहीं करुंगा।
८) मैं खेती का धंधा नहीं करुंगा।
९) मैं खेती में उपयोगी ऐसी खाद तथा हिंसक कीटनाशको को बेचने का धंधा नहीं करुंगा।
१०) मैं माल की हेराफेरी के लिये ट्रान्सपोर्ट का धंधा नहीं करुंगा।
११) मैं बिल्डर्स का धंधा नहीं करुंगा।
१२) मैं घासलेट, पेट्रोल, डीजल, गैस वगैरह बेचने का धंधा नहीं करुंगा।
१३) मैं तलाव, कुंआ, बोरिंग वगैरह नहीं खुदवाऊंगा।
१४) मैं पशु, पक्षी तथा मानव के अवयव बेचने का धंधा नहीं करुंगा।
१५) मैं पशु, पक्षीयो के अंग, नाक, कान वगैरह छेदुंगा नहीं, दूसरो के पास से छिदवाऊंगा नहीं, नसबंदी भी नहीं करवाऊंगा।
१६) मैं तंबाकु, बीडी, सिगरेट, गुटके, मावे आदि बनाने व बेचने के धंधे नहीं करुंगा।
१७) मैं चरबीवाले साबुन, टूथपेस्ट वगैरह का धंधा नहीं करुंगा।
१८) मैं शहद, मांस, मदिरा, मक्खन वगैरह बनाने या बेचने का धंधा नहीं करुंगा।
१९) मैं मटके पर आंकडा लगाने का या लॉटरी निकलाने का धंधा नहीं करुंगा।
२०) मैं तलवार, बंदूक, पिस्तोल, तमंचा, बरछी वगैरह हिंसक शस्त्र बनाने तथा बेचने का धंधा नहीं करुंगा।
२१) मैं जहर और जहरीली दवाये बनाने एवं बेचने का धंधा नहीं करुंगा।
२२) मैं कपास की जिन प्रेस नहीं डालूंगा।
२३) मैं कपडे की मिल नहीं डालुंगा।
२४) मैं मछली पकडने के जाल नहीं बेचूंगा , और ऐसी कंपनियों के शेयर भी नहीं लुंगा।
२५) मैं मत्स्य उद्योग करुंगा नहीं, करवाऊंगा नहीं।
२६) मैं नदी, तलाब, सरोवर का पानी यंत्र से खाली नहीं करवाऊंगा।
२७) मैं व्याभिचारी स्त्री, वेश्या वगैरह का शोषण नहीं करुंगा।

२८) मैं सिनेमा थियेटर बनाऊंगा नहीं तथा उसमें सिनेमा बताने का धंधा नहीं करुंगा ।

२९) मैं चौमासे (वर्षा ऋतु) में नया मकान नहीं बनाऊंगा एंव बेचूंगा भी नहीं ।

३०) मैं चौमासे (वर्षा ऋतु) में घर को रंगरोगान नहीं करवाऊंगा ।

३१) मैं स्टीमर, जहाज, नाव बनाऊंगा नहीं, रखूंगा नहीं एवं बेचूंगा भी नहीं ।

३२) मैं पुलिस, फौजदार, इन्स्पेक्टर, डी.एस.पी. की नोकरी नहीं करुंगा ।

३३) मैं सिनेमा, नाटक, सर्कस में काम नहीं करुंगा ।

३४) मैं सिनेमा में अभिनेता, अभिनेत्री या अन्य पात्रो का अभिनय नहीं करुंगा ।

३५) मैं सिनेमा, टी.वी, विडीओ, केबल्स वगैरह बेचने का धंधा नहीं करुंगा ।